International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly

ISSN – 2347-7075
Impact Factor – 7.065
Vol.7 No.3 Jan –Feb 2020

हिंदी नाटक 'कोणार्क' और महाशिल्पी विशु

प्रा. व्हि. पी. नंदगिरीकर
हिंदी विभागाध्यक्ष,
बॅ. खर्डेकर महाविद्यालय, वेंगुर्ला (महाराष्ट्र)

स्वातंत्योत्तर युग के नाटककारों में जगदीशचंद्र माथुर अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपके नाटकों में साहित्यिकता के साथ–साथ अभिनयता का गुण भी समाविष्ट मिलता है। आपकी नाट्य–कृतियों में 'कुँवरसिंह की टेक','शारदीय', बंदी, 'कोणार्क' तथा 'पहलाराजा' का अनन्य साधारण महत्व है। इनमें जहॉ एक ओर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में आंकने की, तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिवेष को रूपायित करने की ललक दिखाई देती है, वहॉ दूसरी ओर वैयक्तिक अनुभूतियों को गहन स्तरों पर उद्घाटित करने का आकांक्षा भी परिलक्षित होती हैं। हिंदी साहित्य में नाटक की लंबी परम्परा देखने को मिल जाती हैं। युगप्रवर्तक भारतेंदूजी ने अन्य साहित्यिक विधाओं के समान नाटक को भी एक नया मोड देने का काम किया, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर सांस्कृतिक, राजनितिक, सामाजिक इतिहास को उज्ज्वल बनाने का काम जयषंकर प्रसादजीने किया, परंतु इतिहास की पृष्ठभूमि को लेकर कथ्य, षिल्प, षैली आदि को नया मोड देने का काम माथुरजीने 'कोणार्क' के द्वारा कि, जिसके संदर्भ में डॉ.माधव सोनटक्केजी कहते है कि,–''जगदीषचंद्र माथुर एक प्रयोगधर्मी नाटककार रहे है। कोणार्क, षारदीया तथा पहला राजा उनकी चार्चित नाट्यकृतियॉ है। इनमें से 'कोणार्क' विषेष रूप में ख्यात नाट्यकृति हैं यह उनकी पहली नाट्यकृति है, लेकिन हिंदी नाट्य साहित्य को एक नया मोड देने की क्षमता उसमें समायी हुई है।''[1] कोणार्क नाटक के द्वारा एक नयी नाट्य परंपरा की षुरूवात होने लगी जिसके प्रणेता जगदीषचंद्र माथुर रहे हैं। परंपराओं को तोडकर एक प्रयोगषील नाटककार के रूप में जगदीषचंद्र माथुर जी का योगदान रहा है। ऐतिहासिकता को अपनाते हुए भी रंगमंचीय दृष्टि से उपयोग करने का काम माथुर जी ने किया है। हिंदी का पहला नाटक होने का मान 'कोणार्क' को जाता हैं। प्रो. विष्णुकांत षास्त्री कहते है–''इन नए नाटककारों के लिए इतिहास केवल उदाहरण मात्र हैं। जिसका उपयोग वे अपने कथ्य को अधिक परिस्फुट एवं प्रभावषाली बनाने के लिए करते है।उनकी मूल निष्ठा अपने कथ्य के प्रति है, ऐतिहासिक घटनाओं या चरित्र के प्रति नहीं।''[2] माथुर जी ने अपनी नाट्य रचना के लिए पूर्णतः नयी षुरूवात की है इस संदर्भ में नाट्येतिहास लेखक डॉ. दषरथ ओझा यह मानते है कि–''××× आज सर्वत्र समाजवाद की पुकार

है। नाटक समाजवादी आधार पर समाज की खोज में लगा है। विगत बीस वर्षो के नाट्यसाहित्य के परिचय से यही तथ्य प्रमाणित हो रहा हैं। जगदीषचंद्र माथुर का कोणार्क इस दिषा में प्रथम प्रयास हैं।''[3] नये नाटक के संदर्भ में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए आलोचक गोविंदचातक कहते है–''हिंदी– नाट्य साहित्य के विकासक्रम में भारतेंदू और प्रसादकी नाट्यकृतियों के बाद 'कोणार्क' ही ऐसा प्रयोग है जो पुरातनता और नूतनता का कथ्य–षिल्प दोनों ही दृष्टियों से समूचित आकलन करता हैं। भारतेंदू ने हिंदी – नाटक को नये युग बोध से जोडने और प्रसाद ने उसे एक विषिष्ट मानवीय धरातल देने में जो योग दिया है उसको एक नया मोड देने का श्रेय जगदीषचंद्र माथुर को है।''[4]

अतः नाट्येतिहास के कई सारे समीक्षकों, लेखकों, इतिहासकारों ने जगदीषचंद्र माथुर के इस नाटक को नये नाटक की श्रेणी में रखा हैं। अपने कथा, षिल्प अथवा कथ्य के आधार पर आजादी के बाद नाट्यसाहित्य को नया मोड देने का काम माथुर जी के 'कोणार्क' नाटक के माध्यम से होता है। इसके पूर्व इस प्रकार का प्रयोग नहीं हुए।ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारीत 'कोणार्क' जगदीषचंद्र माथूर की एक ऐसी नाट्य–रचना है जिसमें नरसिंहदेव–युगीन कला एवं संस्कृति के स्वर्णिम युग को कलाकार के गहन अंतर्द्वन्द्व की छाया में प्रस्तुत किया हैं। इस नाटक में जहॉ ऐतिहासिक और विष्वप्रसिध्द सूर्यमंदिर के ध्वंस की कहानी कही है। वहॉ नाटककार के ही षब्दों में कलाकार के युगयुगीन अंतर्द्वन्द्व को मुखर किया गया हैं। 'कोणार्क' नाटक षिल्प–रूप की नवीनता तथा कलात्मक उत्कृष्टता दोनों ही दृष्टियों से सर्वांगसुंदर नाट्य रचना है।'कोणार्क' उत्तम नाटक है। इतिहास, संस्कृति और समकालीनता मिलकर निरवधिकाल की धारणा और मानवीय सत्य की कथा को परिपुष्ट करतें है। घटना की तथ्यता और नाटकीयता के बावजूदमहानषिल्पी विषु की चिंता और धर्मपद का साहसपुर्ण प्रयोग, व्यवस्था की अधिनायकवादी प्रवृत्ति से लडने और जुझने की प्रकिया एवं उसकी परिणति का संकेत नाटक को महत्वपूर्ण रचना बना देता है।''[5] कोणार्क नाटक की कथावस्तु का संबंध उत्कल प्रदेष की एक ऐतिहासिक दुर्घटना से संबंधित है। सर्वसाधारणतः सातवीं षताब्दी से लेकर तेरहवी षताब्दी तक उडीसा में एक के बाद एक विषाल, भव्य कलापूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ जो आज भी भुवनेष्वर, जगन्नाथपूरी एवं कोणार्क में तत्कालीन कला के साक्षी रूप खडे हैं। 'कोणार्क' मंदिर का निर्माण जिस समय हुआ था, उस समय उत्कल में गंगवंषीय महाप्रतापी राजा नरसिंह देव वहॉ के षासक थे। उनका राज्यकाल सन 1238 से 1264 तक माना जाता है और ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर नाटक में वर्णित सुर्यमंदिर का निर्माण उन्होंने ही कराया था। नरसिंहदेव महाप्रतापी होने के साथ ही कला के भी पूजारी थे। इसीलिए उन्होंने अपने प्रधान षिल्पी विषु को 'कोणार्क' का अपूर्व मंदिर बनाने का आदेष दिया। 'कोणार्क' का यह अभूतपूर्व मंदिर महाषिल्पी विषु और उसके बारह–सौ सहयोगी

षिल्पियों के कलापूर्ण एवं अनवरत परिश्रम से धीरे–धीरे अपनी संपूर्ण प्रांजलता के साथ आकार ग्रहण करने लगा। हजारो मजदूर और सैकडों षिल्पियों के द्वारा कोणार्क का मंदिर अभी पूरा नहीं बना था कि महाराज नरसिंहदेव को यवनों को पराजित करने के उद्देष्य से बंग प्रदेष तक जाना पडा। एक ओर महाषिल्पी विषु अपने सहयोगियों के साथ मंदिर की मूर्तियों के भव्य निर्माण कार्य में तत्पर था और दूसरी ओर महाराज जब युध्द क्षेत्र की ओर गए तो अपने परम विष्वासपात्र महामात्य चालुक्य को उत्कल का गुरूतर षासन–भार सौंप गए। चालुक्य के विष्वासघात के कारण ही 'कोणार्क' मंदिर खंडर में तबदील हो जाता है। 'कोणार्क' मंदिर के संदर्भ में नाटककार माथूरजी कहते है– ''कोणार्क सूर्य देवता का मंदिर था,जिसके दूर्ग–प्राचीर के बारह चक्र संभवतः बारह महिने के, सात घोडे सात दिवसों के और मंदिर के भीतर निरालंबल कटती हुई मूर्ति आकाष में चमकते निराधार सुर्य के प्रतीक है। सूरज पूर्व से उगता है, इसलिए भारत की भूमि के सबसे पूर्वो तट पर यह मंदिर बना जो भारत में पूर्व से उगते सूरज का प्रतीक है।''[6]कोणार्क नाटक की कथावस्तु कुल तीन अंको में विभाजित है।नाटक के पहले अंक में महाषिल्पी विषु मंदिर निर्माण में अपने–आप को झोंक देते है।उनकी लगन और मेहनत का परिचय होता है, साथ ही अपने–आप को राजनीति से पूर्णतः अलग माननेवाले महाषिल्पी विषु है। बेटे धर्मपद से उनकी मुलाखात भी हो जाती हैं। द्वितीय अंक में महाराज का आगमन, धर्मपद का विद्रोही रूप, निर्भीकता आदि दिखाई देते है। तृतीय अंक में घनघोर युध्द देखने को मिल जाता हैं। जिसमंदिर का निर्माण विषु एवं बारासौ कलाकारों ने किया था, उसी मंदिर को अपने बेटे की मृत्यु के कारण उध्वस्त करने का काम विषु करता हैं। संपूर्ण नाटक में महाषिल्पी विषु का व्यक्ति एवं कर्तुत्व उभरकर सामने आता है। वही वास्तव में नाटक का नायक हैं।

विषु का चरित्र 'कोणार्क' नाटक में अंत्यत महत्वपूर्ण है और नाटकीय कथा का प्रधान पात्र एव ंनायक भी वही हैं। वह उत्कल राज्य का प्रधान षिल्पी है तथा उत्कल नरेष महाराज नरसिंहदेव का कृपा पात्र है। महाषिल्पी विषु न केवल महान कलाकार है वरन् उसका संपूर्ण अस्तित्व ही कला–साधना को समर्पित है। मंदिर निर्माण एवं तद्नुकूल मूर्तिकला में वह सिध्द हस्त है। उसकी अद्भूत षिल्पकला एवं लगन–षीलता को देखकर ही महाराज नरसिंहदेव उसे अपना प्रधान षिल्पी नियुक्त करते हैं। महाषिल्पी विषु सामान्य जीवन यापन करनेवाला कलाकार है। राज्य का प्रधान षिल्पी होते हुए भी रहन–सहन अत्यंत सामान्य और षालीनतापूर्ण रही है। नाटककार उनके संदर्भ में कहतें है कि–''मंदिर की यह झलक जितनी सजावटपूर्ण है उसकी अपेक्षाकृत महाषिल्पी निवास–स्थान, यह कमरा अत्यंत सादा और अलंकार–विहीन हैं।इधर–उधर कुछ आधी– उत्कीर्ण मूर्तियॉ पडी है। कुछ पाषाण–खण्ड रखे है जिन–पर की गई खुदाई नजर पडती है। कुछ छैनियॉ और अन्य औजार भी पडे हैं। बांई खिडकी के पास एक लंबी चौकी रखी है जिसके सिरहाने के

तरफ पकडी की उॅची पीठ है जैसीकि अक्सर प्राचीन सिंहासनों में हुआ करती थी। चौकीपर एक सादा कालीन बिछा हैं। चौकीपर चिंतित अवस्था में बैठे है महाषिल्पी विषु।''[7]इतने बडे कलाकार होने के बावजुद भी महाषिल्पी विषु अपना जीवन अत्यंत सामान्य पध्दती से यापन करते हैं। कला के प्रति संपूर्ण समर्पण का भाव महाषिल्पी विषु में देखने को मिल जाता है।जगन्नाथपुरी और भुवनेष्वर के अप्रतिम मंदिरों के निर्माण के बाद कोणार्क के सुर्यमंदिर का निर्माण करते हुए वह जिस निष्ठा से कार्यरत है और जिस हेतु चिंतित दिखाई देता है उससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि वह एक सच्चा कलाकार है। कलाकी सर्वांग सुंदरता को ही वह जीवन की संपूर्ण सार्थकता मानता है। 'कोणार्क' मंदिर में कलष स्थापित न हो पाने से हम उसे चिंतित देखते है और उसे यह चिंता इसलिए है, कि अपनी सच्ची कला के जिस अपरूप रूप की वह कल्पना करता था वह पूर्ण नहीं हो पा रहा थी। उनकी चिंता एक समर्पित कलाकार की चिंता दिखाई देती है– ''जानता हूॅ। लेकिन मंदिर की महती कल्पना मेरी बुध्दि के परे हो चली है। मुझे न मालुम था कि सूर्यदेव के जिस विषाल वाहन का मैं स्वप्न देखा करता था, वह सच्चा होते–होते इस पार्थिव धरातल से उठकर भगवान भास्कर के चरण छूने के लिए उतावला हो उठेगा।''[8]सुर्यमंदिर के संदर्भ में दिन–रात सोचनेवाले तथा इस काम की अपूर्णता को लेकर चिंतित दिखाई देते है। अगर मंदिर का निर्माण पूरा न हुआ तो वे उसे नष्ट भी करना चाहते है। साथ ही उनका मानना यह भी है कि जो कलाकार होता है उसमें विद्रोह की भावना नहीं होनी चाहिए उसका समर्पण तो कला के प्रति होना चाहिए इस बात को नये कलाकार धर्मादास को समझाते हैं। विषु अपनी षिल्पकला के प्रति इतना समर्पित है कि कला को ही जीवन मानता हैं। वह कला को अष्लील–ष्लील के घेरे से परे मानता है–''वह सारे जीवन का प्रतिबिंब है। देखो, हमारे कोणार्क देवालय को ऑखे भरकर।✕✕✕✕। देखते हो, उसमें मनुष्य के सारे कर्म, उसकी सारी वासनाऍ मनोरंजन और मुद्राऐं चित्रित है। यही तो जीवन है।''[9] यही तो बडे कलाकार की विषेषता होती हैं।

'कोणार्क'नाटक के नायक एवं महानषिल्पी विषु अपने कर्तव्य को महत्वपूर्ण मानते हैं। यही तो सच्चे कलाकार की निषानी हैं। कला को ही अपना धर्म माननेवाले महाषिल्पी विषु दिखाई देता है। उनकी कर्तव्यषीलता का इससे बडे प्रमाण और क्या हो सकता है, कि वह प्रधान षिल्पी होने के नातेप्राप्त समस्त सुखों और विलासों से दूर रहकर मंदिर के प्रांगण में ही एक कुटियॉ में निरंतर कार्यरत रहता है। उनकी यह एकांत साधना उसकी कर्तव्यपरायणता की ही द्योतक है और जब राजीव उससे अन्यायी महामात्य चालुक्य के अत्याचारों का वर्णन करता है तथा सौम्यश्री भी इसकी पुष्टि करता है तब भी विषु इतना कहता है– ''किसी की षक्ति बढे या घटे– हमें तो कोणार्क को पूरा करना है।''[10] आगे चलकर विषु समझाते हुए कहते है कि जो कला उसका जीवन बन चूकी है उससे वह

कतही दूर नहीं जा सकता तथा कलाकारों को राजनीति से पूर्णतः अलग रहना चाहिए। उनकी दृष्टि में राजनीतिक कार्य राजनायकों को ही षोभादेते है। कलाकार को राजनिति से क्या मतलब? महामात्यचालुक्य के द्वारा अन्य षिल्पी एवं महिलाओं पर अन्याय,अत्याचार किया है, इस बात को भी विषु जानते हुए भी चालुक्य का प्रतिरोध नहीं करता वो तो अपनी कला में पूर्णतः डूब चूका है–''किसी की ष्षक्ति बढ़े या घटे – हमें तो कोणार्क को पूरा करना है।''[11] इस उद्देष्य की ओर सौम्यश्री का ध्यान आकर्षित करता हैं।

महाषिल्पी विषु एक श्रेष्ठ कलाकार हाने के नाते स्वभावतः गंभीर रहता है। कुछ तो प्रेमजन्य असफलताओं और कुछ अपनी लगनषीलता के कारण वह उपहासारूपद स्थितियों से सदा विरक्त रहता है और किसी भी बात को गंभीरता से लेता है। जब षिल्प संबंधी गंभीर कठिनाई में पड जाता था तो निराष नहीं होता, न ही अपना धैर्य खो बैठता बल्कि उस कठिनाई पर गंभीर चिंतन करता रहता था और उस सुत्र की खोज में रहता जिससे कठिनाई हल हो सके। नाटक के प्रारंभ में ही कलष स्थापित न हो सकने की समस्या से हम उसे गंभीरतापुर्वक चिंतनग्रस्त देखते है परंतु धर्मपद के प्रखर व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वह गंभीरतापुर्वक विचार करने लगता है, कि वह कौन है और जब धर्मपद की घायलावस्था में उसे ज्ञात होता है कि वह उसी का पुत्र है, तब तो उसकी गंभीरता चरम पर जा पहूँचती हैं। गंभीरता के साथ ही नाटककारको उनके व्यक्तित्व, महान्ता का प्रभाव भी दिखाई देता हैं। उनके संपर्क में जितने भी व्यक्ति आते है, उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते। अपने युवा काल में वह मंदिर निर्माण हेतु षबर अटीविका के निकट गया था। वहॉ एक सुंदरी षबर कन्या सारिका से उसका प्रेम हो गया किंतु ज्यों ही उसे ज्ञात होता है कि सारिका गर्भवती है, वह प्रतिष्ठा एवं अपने सम्मान की रक्षा हेतु वहॉ से भाग खडा होता है। सौम्यश्री से कहता है–'' जब मुझे ज्ञात हुआ कि वह मॉ बननेवाली है तो कुल और कुटूम्ब के भय ने मुझे ग्रास लिया। नदी पर बढती सॉझ की तरह उस भय की तन्द्रा मेरी बुध्दि पर छा गयी। और मैं भाग आया। सारिका और उसकी संतान से दूर बहुत दूर ––।''[12] यौवनकाल में हुई भूल को स्वीकारते हुए कालान्तर में पछताना रहता है। सौम्यश्री सम्मुख वह अपने अपराध को स्वीकारते हुए सारिका एवं उसकी संतान के प्रति चिंता व्यक्त करता हैं। धर्मपद को देखकर उसके हद्य में कही षंका उठती है और बाद में युध्द में जब धर्मपद घायल होकर भूमिपर गिर पडता तब उसके गलेसे छिटके कण्ठहार को देखकर उसे विष्वास हो जाता है कि धर्मपद उसका ही पुत्र है।वह सौम्यश्री से कहता है कि–'' कैसे उसे बताऊॅगा, मुझे तो वह जानता ही नहीं, पर जान लेने पर क्या सोचेगा वह? क्या वह मेरा मुख भी देखना चाहेगा ?''[13] युवा अवस्था में हुई भूल को प्रामाणिकता के साथ स्वीकार करते हुए सौम्यश्री के सामने अपनी भावनाओं को उजागर करता है। विषु जिस प्रकार सहनषील कलाकार, संयमितता है, राजनीति से अपने–आप को अलग रखने

का काम करते है उसी प्रकार से अपने पुत्र के युध्द में वीरगती को प्राप्त हो जाने के उपरांत प्रतिषोध की भावना भी निर्माण हो जाती है। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि–''षिल्पी के प्रतिषोध के कारण, कला के सनातन मूल्यों की रक्षा के लिए ध्वंस से निर्माण और विजय की प्रतीकात्मक स्थापना के कारण। अन्त इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय है कि विषु के मन में और पुत्र के प्रति मोह–क्षण पर कला–मूल्यों की विजय दिखाकर लेखक ने व्यापक जीवन –सत्यों पर न्यौछावर किया जाता दिखाकर एक आदर्ष भी प्रस्तुत किया है ––– ।''[14]

अतः कहा जा सकता है कि, नाटककार जगदीषचंद्र माथुर का अपनी नाट्यकृतियों के कारण हिंदी साहित्य में विषिष्ट स्थान है। उनके ऐतिहासिक नाटककों के द्वारा इतिहास के कथ्य को आधार बनाकर नयी नाटकों की परंपरा षुरू करने का काम किया है। ऐतिहासिक नाटक कों के संदर्भ में रंगमंच की असुविधाओं को समाप्त कर उसे नये परिप्रेक्ष में स्थापित करने का काम माथुरजीने किया है। नाटक के नायक विषु का चरित्र संपूर्ण नाटक में प्रभावषाली दिखाई देता है, नाटक का नायक एक षिल्पी को बनाने का काम जगदीषचंद्र माथुर के द्वारा हुआ है। यह कोई सामान्य कलाकार नहीं है तो अपने तपोबल के द्वारा अनेक मंदिरों का निर्माण उन्होंने किया है, जिसकी ख्याति दसो दिषाओं में फैली हुई है, महान कलाकार होते हुए तथा राजकीय आश्रय प्राप्त होने के उपरांत भी सामान्य जीवन व्यापक करनेवाले विषु दिखाई देते है, आज के कलाकारों के लिए विषु का चरित्र आदर्षवत है। कला के प्रति सच्ची भावना, समर्पण तथा अपने कर्तव्य से दूर न हटनेवाले विशु दिखाई देते है।

संदर्भसूची :

01) समकालीन नाट्य विवेचन – डॉ. माधव सोनटक्के पृ–17
02) कुछ चंदन की कुछ कपूर की – विष्णुकांत शास्त्री पृ – 205–06
03) हिंदी नाटक : उद्भव और विकास – दशरथ ओझा पृ –432
04) नाटककार जगदीशचंद्र माथुर – गोविंदचातक पृ–29
05) इंटरनेट से
06) कोणार्क – जगदीशचंद्र माथुर
08) वही ––09)वही ––10)वही ––11)वही ––12)वही ––13)वही ––
14) जगदीशचंद्र माथुर की नाट्यसृष्टि – डॉ. नरनारायण राय पृ–43